राजस्थान के शिलालेखों का वर्गीकरण

डॉ० रामवल्लभ सोमानी

इतिहासकी साधन सामग्रीमें शिलालेखोंका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। राजस्थानमें मौर्यकालसे ही लेकर बड़ी संख्यामें शिलालेख मिलते हैं। इनको मोटे रूपसे निम्नांकित भागोंमें बाँट सकते हैं :—

१. स्मारक लेख
२. स्तम्भ लेख
३. प्रशस्तियाँ
४. ताम्रपत्र
५. सुरट्ट व अन्य धार्मिक लेख
६. मूर्ति लेख
७. अन्य

स्मारक लेखोंमें मुख्य रूपसे वे लेख हैं जिन्हें घटना विशेषको चिरस्थायी बनानेके लिए लगाये जाते हैं। राजस्थानमें "मरणे मंगल होय"की भावना बड़ी बलवती रही है। युद्धमें मृत वीरोंको मुक्ति मिलनेका उल्लेख मिलता है। राजस्थानके साहित्यमें इस प्रकारके सैकड़ों पद्य और गीत उपलब्ध हैं किन्तु शिलालेखोंमें भी इस सम्बन्धमें सामग्री मिलती है। वि० सं० १५३०के डूँगरपुर[1]के सूरजपोलके लेखमें उल्लेख है कि जब सुल्तान गयासुद्दीन खिलजीकी सेनाने डूँगरपुरपर आक्रमण किया तब शत्रुओंसे लोहा लेता हुआ रातिया कालियाने वीरगति प्राप्त कर सायुज्य मुक्ति प्राप्त की। लेखमें यह भी लिखा है कि स्वामीकी आज्ञा न होते हुए भी कुलधर्मकी पालना करता हुआ वह काम आया। इस प्रकार देशभक्तिसे ओत-प्रोत राजस्थानी जन-जीवन एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता आया है। हमारे राजस्थानके स्मारक लेखोंमें इसी प्रकारके लेख हैं जिन्हें मुख्यरूपसे इस प्रकार बाँट सकते हैं :—(१) सतियों के लेख (२) झुंझार लेख (३) गोवर्द्धन लेख (४) अन्य आदि।

सतियोंके लेख राजस्थानमें बड़ी संख्यामें मिले हैं। ये लेख प्राय: एक शिलापर खुदे रहते हैं। इसके ऊपरके भागमें सूरज, चाँद बने रहते हैं। मृत पुरुष और सती होनेवाली नारी या नारियोंका अंकन भी बराबर होता है। कई बार पुरुष घोड़ेपर सवार भी बतलाया गया है। १३वीं शताब्दी तकके लेखोंमें पुरुषोंके दाढ़ी आदि उस कालकी विशिष्ट पहिनावाकी ओर ध्यान अंगित करते हैं। इन लेखोंके प्रारूपमें मुख्य बात मृत पुरुषका नाम गोत्र आदि एवं सती होनेवाली स्त्रीका उल्लेख होता है। सती शब्दका प्रयोग प्रारम्भमें नहीं होता था केवल "उपगता" शब्द या इससे समकक्ष अन्य शब्द होता था। कालान्तरमें सती शब्दका प्रयोग किया गया है। इन लेखोंको "देवली संज्ञक" भी कहा जाता रहा है। १६वीं शताब्दी और उसके बादके उत्तरी राजस्थानके लेखोंमें प्रारम्भमें गणपतिकी वन्दना, बादमें ज्योतिषके अनुसार संवत्, मास, तिथि, वार, नक्षत्र, पल आदिका विस्तारसे उल्लेख मिलता है।

---

१. ओझा—डूँगरपुर राज्यका इतिहास।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजस्थानसे प्राप्त सतियोंका सबसे प्राचीन लेख सं० १०६का पुष्करसे मिला हुआ लेख था। इस लेखका उल्लेख श्री हरबिलासजी शारदाने किया था। यह लेख अब अज्ञात है। सम्भवत: ओझाजीने भी इसे नहीं देखा है अतएव इस सम्बन्धमें कुछ निश्चित तथ्यात्मक बात नहीं कही जा सकती है। अब तक ज्ञात लेखोंमें सं० ७४३, ७४५ और ७४९ के छोटी खाटूके लेख उल्लेखनीय हैं। इन लेखोंको डी० आर० भण्डारकर महोदयने प्रथम बार देखा था और सारांश प्रकाशित कराया[1] था। ये तीनों लेख लघु लेख हैं। सं० ७४३ के लेखमें "उवरक पत्नी गद्धिणी देवी उपगता" वर्णित है। धोलपुरके चण्डमहासेनके विस्तृत लेखमें इसुकके पुत्र महिषरामकी स्त्री कण्डुला, जो सती हुई थी, की मृत्युका उल्लेख है। ओसियाँसे सं० ८९५, घटियालेसे सं० ९४३, ९४७ और १०४२ के सतीके लेख मिले हैं। बीकानेरके खीदसरके कुँएके पाससे सं० १०२० का सतीका लेख मिला है। इन प्रारम्भिक सतीके लेखोंमें पति और पत्नीकी मृत्युका उल्लेख मात्र है। सं० ९४७ के घटियालेके प्रतिहार राणुकके लेखमें पतिकी मृत्युका लेख अलग है और पत्नीकी मृत्युका अलग। ऐसा लगता है कि दोनोंके लिए अलग-अलग देवलियाँ बनायी गयी थीं। बेरासर (बीकानेर) के सं० ११६१ के लेखमें "सुहागु राषसण" शब्द अंकित है। इससे स्पष्ट है कि पतिकी मृत्युके बाद वैधव्य दु:खसे पीड़ित न होकर पतिके साथ ही सती होनेका संकेत है। घडाव (जोधपुरके समीप) सं० ११८० के ३ शिलालेख मिले हैं जिनमें गुहिल वंशी हुरजाकी मृत्युका उल्लेख है एवं कई स्त्रियोंके सती होनेका अलग-अलग लेखोंमें उल्लेख है। इसी समयके वि० सं० १२१२के मंडोरके लेखमें एक लेखमें कई स्त्रियोंके सती होनेका उल्लेख है। अतएव इस सम्बन्धमें कोई निश्चित नीति नहीं अपनायी गयी प्रतीत होती है।

१३वीं शताब्दीसे "देवली बनाने" का उल्लेख भी शिलालेखोंमें किया जाता रहा है। वि० सं० १२३९ के केचल्लदेवीके गढ़ (अलवर[2]) के लेखमें राणी केचलदेवीकी मूर्ति बनानेका उल्लेख है। सामान्यत: उस समयतक लेखोंमें सती शब्दके साथ "काष्टारोहण" करना उल्लेखित किया गया है। केवलसरके वि० सं० १३२८ के लेखमें सांखला कमलसीके साथ उसकी पत्नी पूनमदेका काष्टारोहण करना वर्णित है। वि० सं० १३४८ के छापरके लेखमें भी उल्लेख किया है। वि० सं० १३३० का बीठूका लेख महत्त्वपूर्ण[3] है। इसमें मारवाड़में राठौड राज्यके संस्थापक राव सीहाकी मृत्यु और उसकी स्त्री सोलंकिनी पार्वतीका सहगमन करना वर्णित है। जैसलमेरके लेख श्री अगरचंदजी नाहटाने पड़े परिश्रमसे इकट्ठे किये हैं। इन लेखोंमें भट्टिक संवत् का प्रयोग हो रहा है। वि० सं० १४१८ और भट्टिक सं० ७३८ के घडसिंहके लेखमें उसकी राणियोंके सहगमन करनेका ही उल्लेख है। १६वीं शताब्दीसे वहाँके लेखोंमें भी सती शब्दका उल्लेख हुआ है। सं० १६८०के महारावल कल्याणदासकी मृत्युपर २ सतियाँ होनेका उल्लेख किया गया है।

इन लेखोंमें देवलीके लिए लोहटी शब्दका भी प्रयोग हुआ है। सं० १४१८ के रावल घडसिंहके एक लेखमें लोहटी (देवली) को महारावल केसरी द्वारा प्रतिष्ठापित करानेका उल्लेख है। सं० १३०९ के चुरू जिलेके हुडेरा ग्रामसे प्राप्त एक लेखमें "सत चढ़ना" लिखा है। यह लेख श्री गोविन्द अग्रवालने संगृहीत किया है। कुंभासरके सं० १६६९ के लेखमें माँ का पुत्रके साथ सती होना वर्णित है। इसी प्रकारके बीकानेर क्षेत्रसे और भी लेख मिले हैं। इनसे प्रतीत होता है कि माँ पुत्रके स्नेहके कारण उसकी मृत्युके बाद सती

१. वरदा वर्ष अप्रैल ६३ में प्रकाशित श्री रत्नचन्द्र अग्रवालका लेख पृ० ६८ से ७९।

२. मरु भारती वर्ष १३ अंक २ पृ० ७२।

३. रेऊ—मारवाड़का इतिहास भाग १ पृ० ४०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो गयी लेकिन ऐसे मामले राजस्थानमें कम हैं। देवलियोंको बनानेके लिए "खणावित" और जीर्णोद्धारके "उधारित" शब्दोंका प्राय: प्रयोग किया गया है। कई बार देवलियोंके स्थानपर छत्री और मंडप भी बनाये जाते हैं। चाड़वासके वि० सं० १६५० के २ लेखोंमें गोपालदास[1] बीदावतने वि० सं० १६२५ में मरे श्वेतसिंहके पुत्र रामसी और वि० सं० १६४५ में मरे कुम्भकर्णकी स्मृतिमें छत्रियों और मण्डपोंका निर्माण कराया था। कई बार सतियाँ अपने पतिकी मृत्युकी सूचना प्राप्त होनेपर होती थीं। ऐसी घटनायें वहाँ होती थीं जब पतिकी मृत्यु विदेशमें हो जाती थी तब उसकी सूचना प्राप्त होनेपर उसकी स्त्री जहाँ कहीं हो सती हो जाती थी। इस सम्बन्धमें कई लेख उपलब्ध हैं। खमनोर[2]के पास मचीन्दमें वि० सं० १६८३ (१६२६ ई०)के लेखमें भीम सीसोदियाकी मृत्यु बनारसमें हो जानेपर उसकी राणीके वहाँ सती होने और उन दोनोंकी स्मृतिमें वहाँ छत्री बनानेका उल्लेख है। भीम सिसोदिया, स्मरण रहे कि महाराणा अमरसिंहका पुत्र था जो खुर्रमकी सेनामें सेनापति था। खुर्रमने अपने पिता जहाँगीरके विरुद्ध विद्रोह किया था तब मुगल सेनाके साथ लड़ता हुआ भीम काम आया था। यह घटना सं० १६८१ में हुई थी। इस प्रकार इस घटनाके २ वर्ष बाद सती होना ज्ञात होता है। बीकानेर और जोधपुर क्षेत्रसे भी ऐसे कई लेख मिले हैं जिनमें दक्षिणमें युद्धमें मारे जानेपर सती होनेका उल्लेख किया गया है।

उस समय आवश्यक नहीं था कि सबकी रानियाँ सती होवें। कई बार रानियाँ जिनके पुत्र या तो ज्येष्ठ राजकुमार थे या गर्भवती होती थीं तो सती नहीं होती थीं। पुरुषोंके भी प्रेमिकाके साथ मरनेका उल्लेख मिलता है। ऐसी घटनायें अत्यन्त कम हैं। आबू क्षेत्रसे प्राप्त और वहाँके संग्रहालयमें रखे नगरनायका प्रेमीके एक लेखमें ऐसी घटनाका उल्लेख है। यह लेख सं० १५६५ का है। इसी प्रकारसे ताराचन्द कावड़िया जब गौड़वाड़का मेवाड़की ओरसे शासक था तब उसकी मृत्यु सादड़ीमें हो गयी थी। उसका दाह उसके द्वारा बनायी गयी प्रसिद्ध बावड़ीके पास ही हुआ था। उसके साथ उसकी पत्नियोंके साथ कई गायक भी मरे थे। दुर्भाग्यसे अब बावड़ीका जीर्णोद्धार हो जानेसे मूल लेख नष्ट हो गये हैं। इन पंक्तियोंके लेखकने ये लेख वहाँ देखे थे और उक्त बावड़ीका शिलालेख भी सम्पादित करके मरुभारतीमें प्रकाशित कराया था। इस प्रकार इन सतियोंके लेखोंसे तत्कालीन समाजके ढाँचेका विस्तृत ज्ञान हो जाता है। बहुविवाह प्रथा राजपूतोंके साथ वैश्य वर्गमें भी थी। ओसवालोंके कई लेखोंसे इसकी पुष्टि होती है। सतियोंका बड़ा सन्मान किया जाता रहा है। देवलियों की पूजा और मानता दी जाती रही हैं। जिस जातिमें सती होगी वे उसे बराबर पूजा करते रहते हैं।

युद्धमें मरनेपर वीरोंकी स्मृतिमें भी लेख खुदानेकी परिपाटी रही है। इन लेखोंको "झुंझार" लेख कहते हैं। इनमें सबसे प्राचीन ३री शताब्दी ई० पू० का खण्डेलाका लेख है। लेखमें मूला द्वारा किसी व्यक्तिकी मृत्युका उल्लेख हैं जिसकी स्मृतिमें महीश द्वारा उसको खुदानेका उल्लेख किया गया है। लेख खंडित है। लेकिन इससे ३री शताब्दी ई० पू०[3] से इस परम्पराके विद्यमान होनेका पता चलता है। चर्लुसे प्राप्त वि० सं० १२४१ के लेखोंमें मोहिल अरड़ कमलके नागपुरके युद्धमें[4] मरनेका उल्लेख है। वि० सं० १२४३ के रैवासाके शिलालेखमें चन्देल नानण, जो सिंहराजका पुत्र था, की मृत्युका उल्लेख है। लेखमें

---

१. मरुश्री भाग १ अंक १ में प्रकाशित मेरा लेख "बीदावतोंके अप्रकाशित लेख"।

२. राजपूताना म्युजियम रिपोर्ट वर्ष १९३२ लेख सं० ८०।

३. उक्त वर्ष १९३५ लेख सं० १।

४. अरली चौहान डाइनेस्टिज पृ० ९३-९४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके खलुवानाके युद्धमें लड़ते हुए मरनेका उल्लेख किया है। इसकी स्मृतिमें जसराक द्वारा देवली बनानेका उल्लेख है। डुंगरपुरसे वि० सं० १४९८ और १५३० के लेख मिले हैं। वि० सं० १४९८ के लेखमें वर्णित है कि जब डूँगरपुर[1] पर शत्रुका आक्रमण हुआ तब रक्षा करते काम आनेवाले वीरोंका उल्लेख है। यह आक्रमण महाराणा कुम्भाने किया था। वि० सं० १५३० के लेखमें जैसा कि ऊपर उल्लेखित है सुल्तान गयासुद्दीन खिलजोके मालवाके आक्रमणकी ओर संकेत है। इसी प्रकार अकबर और गुजरातके सुल्तान अहमदशाहके बागदपर आक्रमणके समय मरनेवालोंकी स्मृतियोंमें लेख खुदे हुए मिले हैं। ये लेख चबूतरोंपर लगे हुए हैं। मेवाड़से भी कई लेख मिल हैं। करेड़ा जैन मंदिरमें लगे वि० सं० १३९२ के एक लेखमें युद्धमें मृत वीरकी स्मृतिमें "गोमट्ट" बनानेका उल्लेख है। बीकानेर क्षेत्रके उदासरसे वि० सं० १६३४ और १७५० के लेखोंमें भी ऐसा ही उल्लेख है। राजस्थानमें दीर्घकाल तक युद्ध होते रहे हैं। अतएव ऐसे लेखोंकी अधिकता होना स्वाभाविक है।

गायों की रक्षा करते हुए मरना भी गौरव और धार्मिक कर्त्तव्य माना जाता था। ऐसे कई लेख भारतके विभिन्न भागोंके मिले हैं। पश्चिमी राजस्थानमें गायोंकी रक्षा करते हुए मरना एक विशिष्ट घटना थी। इन वीरोंकी स्मृतिमें जो लेख लगाये गये हैं इन्हें "गोवर्द्धन" कहते हैं। इन स्तम्भोंपर गोवर्द्धन-धारी कृष्णका अंकन होनेसे इन्हें गोवर्द्धन कहते हैं। प्रारम्भमें गायोंकी रक्षा करते हुए मरनेवालोंके लिए ही थे बनते थे किन्तु कालान्तरमें इनको बाहरी मुस्लिम आक्रान्ताओंके साथ मरनेवालोंके लिए भी मान लिया गया। इस प्रकार इनका अर्थ व्यापक हो गया था। ये लेख राजस्थानके उत्तरी पश्चिमी सीमान्त प्रान्तसे लेकर नागौर डीहवाना साँभरके पास स्थित भादवा गाँव तकसे मिले हैं। इस क्षेत्रवासियोंको सदैव मुस्लिम आक्रान्ताओंसे लोहा लेना पड़ा था अतएव इस क्षेत्रमें ही ये लेख अधिक मिले हैं जो प्रायः १० वीं शताब्दीसे १३ वीं शताब्दी तकके हैं। इनमें जैसलमेरकी प्राचीन राजधानी लोद्रवासे सं० ९७० ज्येष्ठ शुक्ला[3] १५ का लेख अबतक ज्ञात लेखोंमें प्राचीनतम है। इसमें क्षत्रिय वंशमें उत्पन्न रामधरके पुत्र भद्रकद्वारा गोवर्द्धनकी प्रतिष्ठा करानेका उल्लेख है। नागौरके पास बीठनसे सं० १००२ के लेखमें भी गोवर्द्धनके निर्माणका उल्लेख है। पोकरण जैसलमेर और मारवाड़की सीमापर स्थित है यहाँसे २ लेख मिले हैं सं० १०७० आषाढ़[4] सुदि ६ (२६।७।१०१२) का और दूसरा लेख बिना तिथिका है। ऐसा प्रतीत होता है कि सुल्तान महमूद गजनीके आक्रमणके समयकी ये घटनायें हैं। उसके मुल्तान आदि क्षेत्रोंपर अधिकार हो जानेके बादकी टुकड़ियोंके साथ उसका संघर्ष सीमान्त प्रान्तके निवासियोंसे हुआ था। सं० १०७० के शिलालेखमें परमारवंशी गोगाका उल्लेख है। दूसरे लेखमें गुहिलोतवंशी शासकोंका उल्लेख है। इसे अत्यन्त पराक्रमी और रणभूमिमें युद्ध करनेका उल्लेख किया है। संभवतः यह गजनीके सोमनाथके आक्रमणके समय युद्ध करते हुए काम आया हो तो आश्चर्य नहीं। जोधपुरके पाससे पालगाँवसे वि० सं० १२१८ और १२४२ के गोवर्द्धन लेख मिले हैं। भांडियावास (नागौर) से वि० सं० १२४४ का एक गोवर्द्धन लेख मिला है। लेखमें गोवर्द्धनकी प्रतिष्ठाका सुन्दर वर्णन है। जैसलमेरमें भट्टिक सं० ६८५के कई लेख मिले हैं। इनमें स्त्रियों और गायोंकी रक्षा करते हुए प्राण देना वर्णित है। यह घटना जैसलमेर पर अलाउद्दीन खिलजोके आक्रमणके समयकी है। गायों की रक्षा करते हुए, मरना भी गौरव माना जाता था।

---

१. महाराणा कुम्भा पृ० ९६-९७।
२. उपरोक्त पृ० १९९ फुटनोट ५५।
३. वरदा वर्ष अप्रेल १९६३ पृ० ६८ से ७९।
४. शोध पत्रिका वर्ष २२ अंक २ पृ० ६७ से ६९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हर्ष सं० ८४के भरतपुरके पास कोट गांवके लेखमें ब्राह्मण लोहादित्य द्वारा गायोंकी रक्षा करते हुए मृत्युको प्राप्त करना वर्णित है। अजमेरके राजकीय संग्रहालयमें संगृहीत और बयानासे प्राप्त एक पूर्वमध्यकालीन शिलालेखमें भी ऐसा ही उल्लेख है। इसमें गायोंकी कई आकृतियां उत्कीर्ण हैं और एक पुरुष पीछे अंकित बतलाया गया है।

स्मृतिलेखोंमें साधारणतया "चरणयुगल" बनाकर उनपर छोटा लेखा खुदा रहता है। राजस्थानमें ऐसे लेख बड़ी संख्यामें मिलते हैं। इन्हें "पगलिया" कहते हैं। जैन साधुओंकी मृत्युके बाद निषेधिकायें बनायी जाती थीं जिनपर कई लेख मिले हैं।

स्तम्भलेख भी महत्त्वपूर्ण है। स्तम्भोंको कई नामोंसे जाना जाता है। यथा यष्ठि, यष्टि, लष्टि, लग केतन, यूप आदि। राजस्थानसे प्राप्त स्तम्भलेखोंको निम्नांकित भागों में बांट सकते हैं —

(क) यज्ञस्तूप सम्बन्धी लेख (२) कीर्त्तिस्तम्भके लेख और अन्यस्तम्भ लेख

राजस्थानसे यक्षस्तूप बड़ी संख्यामें मिले हैं। ये स्तम्भ यक्षोंकी स्मृतिको चिरस्थायी रखनेके लिए बनाये जाते थे। धर्मग्रन्थोंमें काष्ठके स्तम्भ बनानेका उल्लेख है। दक्षिणी पूर्वी राजस्थान से ही ये लेख अधिक संख्यामें प्राप्त हुए हैं। यक्षोंकी पुनरावृत्ति मौर्योंके बादसे हुई थी। वैदिक यक्षोंकी प्रतिक्रिया स्वरूप बौद्ध और जैन धर्मोंका उदय हुआ था किन्तु कालान्तरमें इन धर्मोंकी क्रियाओंका जनमानसपर प्रभाव होते हुए भी वे वैदिक परम्परायें छोड़ नहीं सके थे। इसीलिए समय पाकर फिर वैदिक यज्ञोंका पुनरुद्धार हुआ। यह भावना इतनी अधिक बलवती हुई कि यहाँ तक जैन शासक खारवेल तक इससे अछूते नहीं रह सके। राजस्थानमें यज्ञोंसे सम्बन्धित प्राचीनतम लेख नगरीका है। यह लगभग[1] २री शताब्दी ई० पू० का है। इसमें 'अश्वमेध" करनेका उल्लेख है। इस प्रकारके एक अन्य लघुलेखमें वहीं वाजपेय यज्ञका उल्लेख है। शुंगकालके बाद भागवत धर्म तेजीसे बढ़ा। सं०२८२के नान्दशा[2]के यूपलेख बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। ये मालव जातिसे सम्बन्धित हैं। यहां २ स्तम्भ हैं। इनमेंसे एकके ऊपरका भाग खंडित हो गया है। दूसरे स्तम्भपर एक ही लेखको एक बार आड़ा और एक बार खड़ा खोदा गया है। एक ही लेखको २ बार खोदनेका क्या प्रयोजन रहा होगा? स्पष्ट नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भमें लेख बहुत ही ऊपर खोदा गया था। जो जनसाधारण द्वारा सुविधासे पढ़ा नहीं जा सका होगा इसी कारण उसी भागको दुबारा फिर खोदा गया प्रतीत होता है। लेखके प्रारम्भमें, "प्रथम चंद्रदर्शनमिव मालवगण विषयमवतारयित्वा" शब्दोंका प्रयोग हो रहा है। संभवतः उस समय मालवोंने क्षत्रपोंको हटाकर अपने राज्यका उद्धार किया था। बरनालासे[3] सं० २८४ और ३३५के लेख मिले हैं। सं० २८४के लेखमें ७ स्तम्भ लगानेका उल्लेख है। इस समय केवल एक ही स्तम्भ मिला है। सं०३३५के लेखमें अन्तमें "धर्म्मो वर्धताम्" शब्द है। इसमें त्रिराज्ञ यज्ञ करने का उल्लेख मिलता है। कोटाके बड़वा गांवसे सं० २९५के यूप लेख[4] मिले हैं। इनमें मौखरी वंशके बलवर्द्धन सोमदेव बलसिंह आदि सेनापतियोंका उल्लेख है। णिचपुरिया (नगर) के मठसे[5] सं० ३२१का लघु यूप मिला है। इसमें धरकके

१. एपिग्राफिआ इंडिका भाग १६ पृ० २५। आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया मेमोयर सं० ४। राजपूताना म्युजियम रिपोर्ट १९२६-२७ पृ० २०४।
२. इंडियन एंटीक्वेरी भाग LVII पृ० ५३। एपिग्राफिआ इंडिका भाग २७ में प्रकाशित।
३. एपिग्राफिआ इंडिका भाग २६ पृ० ११८।
४. धोटाराज्यका इतिहास भाग १ परिशिष्ट सं० १।
५. मरुभारती भाग १ अंक २ पृ० ३८-३९। शोधपत्रिका वर्ष २० अंक २ पृ० २०-२७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुत्र अहि शर्माका उल्लेखहै। विजयगढ़का सं० ४२८का यूप स्तम्भ मिला है। यह ग्राम बयानाके समीप है। इस लेखमें वारिक विष्णुवर्द्धन जो यशोवर्द्धनका पुत्र और यशोराट्का पौत्र था का उल्लेख है। इसने पुंडरीक यज्ञ किया था। इसके बाद यज्ञोंकी परम्परासे सम्बन्धित लेख अपेक्षाकृत कम मिलते हैं। यज्ञस्तूप तो बादमें नहींके बराबर मिले हैं। एक अपवाद स्वरूप सवाई जयसिंह द्वारा किये गये यज्ञका शिलालेख अवश्य उल्लेखनीय है।

कीर्त्तिस्तम्भ स्थापित कराना गौरवपूर्ण कृत्य माना जाता था। राजस्थानसे अबतक ज्ञात लेखोंमें घटियालाका सं० ९१८का प्रतिहार[1] राजा कक्कुकका लेख प्राचीनतम और उल्लेखनीय है। इस लेखमें प्रतिहार राजा कक्कुककी बड़ी प्रशंसा की गयी है और उसे गुर्ज्जरता, मरुवल्ल तमणी माड आदि प्रदेशोंके लोगों द्वारा सन्मान दिया जाना भी वर्णित है। वह स्वयं संस्कृतका विद्वान् था। उसने २ कीर्तिस्तम्भ स्थापित किये थे एक मंदोरमें और दूसरा घटियालामें। चित्तौड़से जैनकीर्त्तिस्तम्भसे सम्बन्धित कई लेख मिले हैं। जो १३वीं शताब्दीके हैं। लगभग ६ खंडित लेख उदयपुर संग्रहालय में है। एक लेख केन्द्रीय पुरातत्त्व विभागके कार्यालयमें चित्तौड़में है और एक गुसाईजीकी समाधिपर लग रहा है जिसे अब पूरी तरहसे खोद दिया है। इस लेखकी प्रतिलिपि वीर विनोद लिखते समय स्व० ओझाजी ने ली थी जो महाराणा साहब उदयपुर के संग्रह में विद्यमान है। उसीके अनुसार मैंने इसे अनेकान्त (दिल्ली) पत्रिका[2] में सम्पादित करके प्रकाशित कराया है। लेखोंसे पता चलता है कि इसका निर्माण जैन श्रेष्ठि जीजाने कराया कराया था जो बघेरवाल जातिका था। कोडमदेसर (बीकानेर) में एक कीर्त्तिस्तम्भ बना है। यह लाल पत्थरका है। इसके पूर्वमें गणेश, दक्षिणमें विष्णु, उत्तरमें ब्रह्मा और पश्चिममें पार्वतीकी मूर्ति बनी हुई है। इसमें अरड़कमलकी मृत्युका उल्लेख है। बीकानेर क्षेत्रसे धांधल राठौरोंके कई लेख पाबूजीसे सम्बन्धित मिले हैं। वि० सं० १५१५ के फलोधीके बाहर लगे एक लेखमें "राठड धांधल सुत महाराउत पाबूप्रसाद मूर्ति कीर्तिस्थम्भ कारावितं"[3] शब्द अंकित है। लगभग इसी समय चित्तौड़का कीर्त्तिस्तम्भका प्रसिद्ध लेख मिला है। यह कई शिलाओंपर उत्कीर्ण था। अब केवल २ शिलायें विद्यमान हैं। इस लेखमें महाराजा कुम्भाके शासनकालकी घटनाओंका विस्तृत[4] उल्लेख किया गया है। राणिकसरके बाहर वि॰ सं० १५८९ का कीर्त्तिस्तम्भ बना हुआ है। जैन मंदिरोंके बाहर जो लेख खुदे हुए हैं इन्हें "मानस्तम्भ" भी कहते हैं। इनके अतिरिक्त पट्टावली स्तम्भ भी कई मिलते हैं। इनमें विभिन्न गच्छोंकी पट्टावली स्तम्भोंपर उत्कीर्ण की हुई बतलायी गयी है। ये स्तम्भ कई खण्डोंके होते हैं जो कीर्त्तिस्तम्भके रूपमें होते हैं। सं० १७०४ के २ स्तम्भ आमेरके राजकीय संग्रहालयमें हैं जो चारसूसे लाये गये थे। आमेरको नसियामें १९ वीं शताब्दीका विस्तृत स्तम्भ बना हुआ है।

अन्य स्तम्भ लेखोंमें आंवलेश्वरका शिलालेख उल्लेखनीय है। इसमें कुलोनके पुत्र पौण द्वारा भगवानके निमित शैलग्रह बनानेका उल्लेख है। यह २री शताब्दी ई० पू०का है।

प्रशस्तियाँ शिलालेखोंमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होती हैं। इनमें कुछ प्रशंसात्मक इतिवृत्तात्मक एवं

---

१. एपिग्राफिआ इंडिका भाग ९ पृ० २८०।
२. जैन लेख संग्रह भाग ५ पृ० ८४।
३. जर्नल बंगाल ब्रांच रावल एशियाटिक सोसाइटी १९११ पृ०
४. महाराणा कुम्भा पृ० ४०१ से ४११।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ ऐतिहासिक तथ्योंसे युक्त होती है। राजस्थानसे कई प्रशस्तियाँ मिली हैं। वि० सं० ४८० के गंगधारके[१] लेखमें विष्णु वर्माके मंत्री मयूराक्ष द्वारा विष्णु और मातृकाओंके मन्दिर बनानेका उल्लेख है। विष्णु वर्माका अधिकार दक्षिणी पूर्वी राजस्थान और मदसौर क्षेत्रपर था। इसके पुत्र बन्धुवर्माका लेख सं० ४९३ का मन्दसोरसे मिला है। छोटी सादड़ीसे मिली वि० सं० ५४७की प्रशस्तिमें[२] गौरीवंशी शासकोंका उल्लेख है। इस लेखमें भगवान् महापुरुष (विष्णु) के मन्दिरके निर्माणका उल्लेख किया गया है। लेखमें महाराज गौरीके पूर्वज पुण्यसोम, राज्यवर्द्धन, राष्ट्र यशोगुप्त आदिका उल्लेख है। यह औलिकर वंशके शासकोंके आधीन था। खंडेलासे प्राप्त सं० (हर्ष सं०) २०१ के लेखमें धूसरवंशके[3] दुर्गवर्द्धन उसके पुत्र धंगक आदिका उल्लेख है। लेखमें अर्द्धनारीश्वरके मन्दिरके निर्माणका उल्लेख है। बसन्तगढ़के सं० ६८२ के लेखमें बर्मलातके सामन्त[४] बज्रभट्ट सत्याश्रयका वर्णन है और लेखमें देवीके मन्दिरमें गौष्टियोंकी गतिविधिका उल्लेख है। कुसुमाका ६९३ का छेख[५], सामोलीका सं० ७०३ का[६] लेख, नागदाका सं० ७१८[७] का लेख, नगरका सं० ७४१[८] का लेख, झालरापाटनका[९] सं० ७४६ का लेख, मानमोरीका[१०] ७७० का लेख, कन्सुवाका[११] ७९५ का लेख, शेरगढ़का[१२] ८७० का लेख, प्रतिहार[१३] राजा बाऊकका सं० ८९४ का लेख, धोलपुरका[१४] चण्डमहासेनका लेख सं० ८९८, आहडका सारणेश्वरका लेख[१५] १०१० राजोरगढ़का[१६] सं० १०१६ का लेख, एकलिंग[१७] मन्दिरका सं० १०२८ का लेख, हर्षपर्वतका[१८] १०३० का लेख, बीजापुरका सं० १०५३ राष्ट्रकूट[१९] धवलका लेख, पूर्णपालका[२०] सं० १०९९ का लेख, बिजोलियाका[२१] सं० १२२६ का लेख,

१. गुप्ता इन्स्क्रिप्सन्स पृ० ७४।
२. ओझा निबन्ध-संग्रह भाग १ पृ० ८७-९०। एपिग्राफिआ इंडिका भाग ३० पृ० ११२।
३. एपिग्राफिआ इंडिका भाग ३४ पृ० १५९ से १६२।
४. उक्त भाग ९ पृ० १९१।
५. उक्त भाग ३४ पृ० ४७ से ४९।
६. नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १ अंक ३ पृ० ३११ से ३२४। अन्वेषणा भाग अंक २।
७. एपिग्राफिआ इंडिका भाग ३ पृ० ३१-३२।
८. भारत कौमुदी पृ० २७३-७६।
९. इंडियन एंटिक्वेरी भाग ५ पृ० १५१।
१०. टॉड-एनल्स एण्ड एटिक्वीटिज भाग १ पृ० ६१५-६१६।
११. इंडियन एंटिक्वेरी भाग १९ पृ० ५७।
१२. उक्त भाग १४ पृ० ४५।
१३. एपिग्राफिया इंडिका १८ पृ० ९५।
१४. इंडियन एन्टिक्वेरी १९ पृ० ३५।
१५. वीर विनोद भाग १ शेष संग्रह।
१६. एपिग्राफिआ इंडिका भाग ३ पृ० २६६।
१७. जरनल बम्बई ब्रांच रायल एसियाटिक सोसाइटी भाग २२ पृ० १६६-६७।
१८. एपिग्राफिआ इंडिका भाग २ पृ० ११९।
१९. जैन लेख संग्रह भाग २ (मुनि जिनविजय) में प्रकाशित।
२०. एपिग्राफिआ इंडिका भाग ९ पृ० १२।
२१. जैन लेख संग्रह भाग ४ (माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला) में प्रकाशित।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि प्रशस्तियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। आबूसे मिली प्रशस्तियाँ, १३२४ की धाघसाकी प्रशस्ति,[1] १३३० की चीखाकी[2] प्रशस्ति, सं० १४९६ की राणकपुरकी[3] प्रशस्ति, सं० १५१७ की कुंभलगढ़की[4] प्रशस्तियोंका मेवाड़ इतिहासकी साधन सामग्रीमें प्रमुख स्थान है। इनमें इतिहासकी कई उलझी गुत्थियाँ सुलझाई गई हैं। लगभग इसी समय की कई प्रशस्तियाँ केवल प्रशंसात्मक भी है जिनमें ऐतिहासिक सत्य कम और काव्यात्मक वर्णन अधिक हैं। इनमें वेदशर्माको बनाई सं० १३३१ की चित्तौड़की प्रशस्ति,[5] सं० १३४२ की अचलेश्वर-की प्रशस्ति,[6] १४८५ की चित्तौड़के समाधीश्वर[7] मन्दिरकी प्रशस्ति, मुख्य है। जगन्नाथराय मन्दिरकी प्रशस्ति[8] सं० १७०९, राजप्रशस्ति अपने समयकी महत्त्वपूर्ण प्रशस्तियाँ हैं। अनोपसिंहके समयकी बीकानेरकी प्रशस्ति भी महत्त्वपूर्ण है। इन प्रशस्तियोंमें राजाओंकी बंश परम्परा विजय यात्रायें विभिन्न युद्धों आदिका वर्णन रहता है। राजाओं या श्रेष्ठियों द्वारा कराये गये निर्माण कार्योंका भी विस्तृत उल्लेख है। इस प्रकार ये प्रशस्तियाँ मध्यकालीन राजस्थानके इतिहासकी महत्त्वपूर्ण साधन सामग्री है।

प्रशस्तियोंमें प्रारम्भमें देवी-देवताओंकी स्तुति होती है। कई बार इसके लिए कई श्लोक होते हैं। बादमें राजवंश वर्णन रहता है। अगर प्रशस्ति राजासे भिन्न किसी अन्य व्यक्ति की है तो उनका वंश वर्णन आदि रहता है। इसके बाद मन्दिर बावड़ी या अन्य किसी कार्यका उल्लेख जिससे वह प्रशस्ति सम्बन्धित है रहता है। बादमें प्रशस्तिका रचनाकार और उसका वर्णन अन्तमें संवत् दिया जाता है। उदाहरणार्थ डूँगरपुरके पास स्थित ऊपर गाँवकी सं० १४६१ की महारावल पाताकी अप्रकाशित प्रशस्ति, एवं १४९५ की चित्तौड़की प्रशस्तिको लें। ये दोनों लेख जैन हैं। प्रारम्भमें कई श्लोकोंमें जैन देवी-देवताओंकी स्तुतियाँ हैं। बादमें राजवंश वर्णन है। बादमें श्रेष्ठिवर्गका वर्णन है। बादमें साधुओंका उल्लेख है। इसके बाद प्रशस्तिकारका उल्लेख और अन्तमें संवत् दिया गया है। कुछ प्रशस्तियोंमें प्रारम्भमें भौगोलिक वर्णन भी दिया रहता है। सं० १३३१ की चित्तौड़की प्रशस्ति और १३४१ की अचलेश्वर मन्दिरकी प्रशस्तिमें प्रारम्भमें चित्तौड़ नागदा मेवाड़ भूमिकी प्रशंसा की गई है। इसी प्रकार सं० १५१७ की कुंभलगढ़की प्रशस्तिमें, मेवाड़का भौगोलिक वर्णन, मेवाड़के तीर्थक्षेत्र, चित्तौड़दुर्ग वर्णन आदि दिये हैं। इसके बाद वंशा-वली दी गई है।

ताम्रपत्र या दानपत्र बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं और इनको लिखनेमें विशेष सावधानी बरती जाती रही है। लेख पद्धतिमें विभिन्न प्रकारके प्रारूप भी लिखे हैं ताकि इनको लिखते समय इसका ध्यान रखा जा सके। प्रशस्तियोंके प्रारूपसे इनके प्रारूपमें बड़ी भिन्नता रहती है। इनमें प्रारम्भमें "स्वस्ति" आदिके अंकनके बाद संवत्का अंक रहता है। इसके बाद राजाका नाम रहता है। दानपत्र प्राप्त करनेवाले व्यक्ति

---

१. वरदा वर्ष ५ अंक ४ में प्रकाशित।
२. वीर विनोद भाग १ शेष संग्रहमें प्रकाशित।
३. महाराणा कुम्भा पृ० ३८४ से ३८६।
४. उक्त पृ० ३९७ से ४०१।
५. वीरविनोद भाग १ शेषसंग्रहमें प्रकाशित।
६. उक्त।
७. उक्त।
८. एपिग्राफिआ इंडिका XXIV पृ० ५६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और दानमें दी जानेवाली भुमि आदिका विस्तारसे उल्लेख होता है। जैसे भूमिकी सीमायें अंकित रहती हैं। उसके पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिणमें जिन-जिनके खेत या राजपथ होता था उनके नाम दिये रहते है। खेतकी संख्या या स्थानीय नाम भी दिया जाता है। ऊनालू सियालु आदि शाखोंसे जो लगान लिया जाता है उसका भी कभी-कभी उल्लेख रहता है। खेतकी लम्बाई भी कभी-कभी दर्ज रहती है। जैसे ५ हल, आदि। प्रत्येक हलमें ५० बीघा जमीन मानी जाती है। इसके बाद कुछ श्लोक जैसे "आपदत्तं परदत्तं" आदिसे शुरू होनेवाले होते हैं। इनमें वर्णित है कि यह दान शाश्वत रहे और इनको अगर कोई भंग कर देवे तो विष्ठामें कीड़ेके रूपमें उत्पन्न होवे आदि। इसके बाद "दूतक" का नाम होता है जिसके द्वारा उक्त दानपत्र दिया जाता है। ये लेख सामान्यत: एक या अधिक ताम्रपत्रोंपर उत्कीर्ण होता है। एकलिंग मन्दिरका महाराणा भीमसिहका ताम्रपत्र जो लगभग ४ फुट लम्बा है एक अपवाद स्वरूप है। इस लेखमें समय-समय-पर दिये गये दानपत्रोंको एक साथ लिख दिया गया है। राजा लोग दान मुख्यरूपसे किसी धार्मिक पर्व जैसे संक्रान्ति, सूर्यग्रहण आदि अवसरपर देते थे। इसके अतिरिक्त पुत्र जन्म, राज्यारोहण, पूजा व्यवस्था, विशिष्ट विजय रथयात्रा आदि अवसरोंपर भी दान देते थे। मेवाड़में महाराणा रायमल और भीमसिंहके समय बड़े दानपत्र मिलते हैं। रायमलके समयके दानपत्रोंमें कई जाली भी हैं। भीमसिंह दान देनेमें बड़े प्रसिद्ध थे। छोटी-छोटी बातोंपर दान दिये गये हैं। कई लोगोंने पुराने दानपत्र खोनेका उल्लेख करके नये दानपत्र बनवाये हैं। इनमें "भगवान राम रो दत्त" कह करके दानपत्र ठीक किये गये हैं।

दानपत्रोंका विधिवत् रेकार्ड जाता रहा था। "अक्ष पट्टलिक" नामक अधिकारीका उल्लेख प्राचीन लेखोंमें मिलता है। यह दानपत्रोंका रिकार्ड रखता था।

इन दानपत्रोंके साथ-साथ कुछ ऐसे लेख भी मिले हैं जिनमें कुछ अधिकारियोंने अपनेको प्राप्त राशि जैसे तलाराभाव्य, आदिसे मंडपिकासे सीधा दान दिलाया है।

सुरहलेख एक प्रकारका आज्ञापत्र है। इसमें ऊपर सूरज चाँद बना हुआ है स्त्री और गन्दर्भ बना रहता है। सं० ११०४ का लेख टोकरा (आबू) से मिला है।[१] सं० १२२८ का लेख चंद्रावतीसे मिला है। कुम्भारियाजीसे सं० १३१२ और १३३२ के सुरहलेख मिलते हैं[२] जिनमें ग्रामके ५ मंदिरोंकी पूजाके निमित्तदान देनेकी व्यवस्था है। बाजणवाला (गिरवरके पास) ग्राममें १२८७ का सुरहलेख है जिसपर राज-राजेश्वर आदि शब्द ही पढ़े जा सके हैं। आबूके अचलेश्वर मंदिरके बाहर कई सुरहलेख लग रहे हैं। इनमें सं० १२२३, १२२८, १३९८ १५०९ आदिके लेख[३] उल्लेखनीय हैं। मडार ग्राममें बाहर जैराजके चौंतरेके पास सं० १३५२ का वीसलदेव द्वारा दान देनेका उल्लेख है। सं० १५०६ के सुरहलेख महाराणा कुम्भाके[४] आबूमें देलवाड़ा, माघ्व, गोमुख और आबूरोड (रेल्वे हाईस्कूल) से मिले हैं। सं० १६५९ भादवा [५]शुक्का ७ का नाणाग्राममें सुरहलेख हैं इसमें मेहता नारायणदास द्वारा दान देनेका उल्लेख है। बरकानाके जैन मंदिर सं० १६८६ और १८ वीं शताब्दीके २ लेख महाराणा जगतसिंह (i) और (ii) के समयके हैं। चित्तौड़में रामपोलसे सं० १३९३-१३९६ के बणबीरके सुरहलेख,[६] महाराणा आरीसिंहके समयका कालिका

---

१. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा पृ० ११४।
२. उक्त पृ० १४।
३. वरदा वर्ष १३ अंक २ में प्रकाशित मेरा लेख "अचलेश्वर मन्दिरके शिलालेख"।
४. महाराणा कुम्भा पृ० ३९२-९३।
५. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा लेख संदोह II पृ० ३६२।
६. वरदामें प्रकाशित मेरा लेख महाराणा बणवीरके अप्रकाशित शिलालेख।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माताके मंदिरके बाहरका सुरहलेख, महाराणा हमीरसिंह (ii) के समयके रामपोलके २ लेख एवं अन्नपूर्णा मन्दिरके बाहरके सुरहलेख[1] मुख्य हैं। इन सारे लेखोंको मैंने सम्पादित करके प्रकाशित कराये हैं। एक-लिंग मन्दिरके बाहर[2] महाराणा भीमसिंह और सज्जनसिंहके समयके ५ सुरहलेख हैं। उदयपुर शहरमें महाराणा अरिसिंहके समयका सुरहलेख मुख्य है। भीनमालमें महाराजा मानसिंहके समयका एवं मंडोरमें महाराजा तख्तसिंहके समयके सुरहलेख भी प्रसिद्ध हैं। इन लेखोंसे तत्कालीन शासनव्यवस्थाके सम्बन्धमें प्रचुर सामग्री मिलती है। स्थानीय अधिकारियोंके नाम, पद एवं स्थानीय कर जैसे, दाग, मुंडिककर, बलावीकर, रखवालीकर, घरगणतीकर, आदि का पूरा पूरा ब्यौरा रहता है। चित्तौड़, उदयपुर आदिके सुरहलेखोंमें मराठोंके आक्रमणोंका अच्छा वर्णन है। मराठा अधिकारीका सुरहलेख भी चार भुजाके मन्दिरसे सं० १८६७ का एवं गंगापुर (भीलवाड़ा) से सं० १८६२ का मिला है।

धार्मिक लेखोंमें मन्दिरकी व्यवस्था सम्बन्धी उल्लेख मिलता है। मन्दिरोंके लिए प्रायः गौष्ठिक बने रहते थे जो व्यवस्था करते थे। इनका उल्लेख ७ वीं शताब्दीके गोठ माँग लोदके लेख, खण्डेलाके हर्ष सं० २०१ के लेख, बसंतगढ़के ६८२ के लेख, सिकरायका ८७९ के लेख आदिमें होनेसे पता चलता है कि राजस्थानमें ७वीं शताब्दीके पहलेसे ही ऐसी व्यवस्था मौजूद थी। मन्दिर या धार्मिक संस्थानोंकी व्यवस्थाके निमित दानपत्रोंके रूपमें भी कई लेख मिले हैं। इनमें स्थानीय संस्थानोंसे कर लेकर मन्दिरको दिया जाता था। यह कार्य मण्डपिकाके द्वारा होता था। आहडका सं० १०१० का लेख, सं० ९९९ एवं १००३ का प्रतापगढ़का लेख, शेरगढ़ दुर्गके लघु लेख, आदि उल्लेखनीय हैं।

सम्राट् अशोकके बैराठके लेखोंमें धार्मिक आज्ञाओं एवं धर्मग्रन्थोंका उल्लेख है।

मूर्ति लेखोंमें मुख्यरूपसे जैनलेख आते हैं। राजस्थानसे ऐसे कई हजार मिल चुके हैं। इनमें बीकानेर क्षेत्रके लेख श्री नाहटाजीने सम्पादित किये हैं। पुण्यविजयजीने आबू क्षेत्रके लेख प्रकाशित किये हैं। श्री पूर्णचन्द्र नाहरने जैसलमेर एवं अन्य क्षेत्रोंके लेख सम्पादित किये हैं। दिगम्बर लेखोंमें ऐसा विशिष्ट प्रकाशन मूर्ति लेखोंका नहीं हुआ है इन लेखोंमें प्रारम्भमें अर्हत्का उल्लेख होता है। बादमें संवत् बना रहता है। इसके बाद लेखमें स्थानीय राजाका उल्लेख रहता है। मूर्ति लेखमें राजा का उल्लेख होना आवश्यक नहीं है। कई बार इसे छोड़ भी दिया जाता है। इसके बाद मूर्ति बनवानेवाले श्रेष्ठिका परिचय रहता है। उसके गाँवका नाम, पूर्वजोंका वर्णन, मूर्तिका वर्णन एवं जैन आचार्य, जिनके द्वारा प्रतिष्ठा की गयी हो, का वर्णन रहता है। कई बार मूर्ति बनानेवाले शिल्पीका नाम भी रहता है। संवत् कई बार बादमें मिलता है। मूर्ति लेखोंमें एक विशिष्ट बात यह है कि उस समयके नाम प्रायः एकाक्षर बोधक होते थे। मूर्ति लेखोंमें प्रायः बोलीमें आनेवाले शब्दोंका ही प्रयोग किया गया है जो उल्लेखनीय है। कई बार श्रेष्ठियों और उनकी पत्नियोंके नाम एकसे मिलते हैं जैसे मोहण-मोहणी आदि। बहुपत्नीवादकी प्रथाकी ओर भी इनसे दृष्टि डाली जा सकती है। जैनियोंके विभिन्न गोत्रों आदि जैन साधुगच्छोंपर भी विस्तारसे इन मूर्ति लेखों द्वारा अध्ययन किया जा सकता है। ये मूर्ति लेख इस दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण हैं। राजस्थानमें कांस्य मूर्तियोंके लेख ७वीं, ८वीं शताब्दीसे मिलने लग गये हैं किन्तु पत्थरकी प्रतिमाओंपर ९००के बादके ही लेख अधिक मिलते हैं। राजपूत राजाओंके शासनकालमें १०वीं शताब्दीके बाद जैन श्रेष्ठि-योंने अभूतपूर्व शासनमें योगदान दिया इसके फलस्वरूप जैन धर्मकी बड़ी उन्नति हुई। मूर्ति लेखोंसे एक बार प्रतिष्ठित हुई प्रतिमाके दुबारा प्रतिष्ठित होनेके भी रोचक वर्णन मिलते हैं।

---

१. शोधपत्रिका वर्ष २१ अंक १ में प्रकाशित मेरा लेख।

२. मज्झमिका (१९७१) पृ० १०४ से ११०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्य लेखोंमें कूप बावडियोंके, तालाब आदिके वर्णन उल्लेखनीय हैं। प्रतिहारकालकी बावडियाँ, ओसियाँ, मण्डोर आदिसे मिली हैं। मण्डोरकी बावडीसे ७वीं शताब्दीका शिलालेख भी मिला है।[1] यह लेख सं० ७४२का है और ९ पंक्तियोंका है। सं० ७४१के नगरके शिलालेखमें वापी निर्माणका श्रेय भीनमालके कुशल शिल्पियोंको दिया गया है। चित्तौड़के वि० सं० ७७०के लेखमें भी इसी प्रकार मानसरोवरके निर्माणका उल्लेख किया गया है। कुवोंके लिए अरहट शब्दोंका प्रयोग भी मिलता है। जगत[2] गांवके अम्बिका माताके मन्दिरमें सं० १०१७का लघु लेख मिला है। इसमें वापी कूप तडागादि निर्माणका उल्लेख मिलता है। अहडसे प्राप्त स० १००१ के लेखमें गंगोद्भव कुण्डका उल्लेख है। १०९९ का पूर्णपालका बसंतगढ़का लेख है जिसमें बावडी बनानेका उल्लेख है। बिजोलियाके मन्दाकिनी कुण्ड, जहाजपुरके कुण्ड, गंगातटके कुण्डों, आबूके अचलेश्वरके कुण्डसे भी कई लेख मिले हैं। ये स्थान बड़े धार्मिक माने जाते रहे हैं अतएव ये लेख इस दृष्टिसे बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। मध्यकालमें कूप तडाग और बावड़ियोंके लेख असंख्य मिले हैं। मालदेवके लेखमें बावडीमें होनेवाले व्यय का विस्तारसे उल्लेख है। उस कार्यमें काम आनेवाली सारी सामग्रीका भी जिक्र है। राज प्रशस्तिमें इसी प्रकारका पूर्ण व्यौरा है।

---

१. सरदार म्युजियम रिपोर्ट वर्ष १९३४ पृ० ५।

२. वरदा अक्टू० ६३ पृ० ५७ से ६३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org